मनकू चाँदनी चौक में

मुकुल प्रियदर्शिनी

बच्चों से

बच्चो, शाहजहाँ का नाम तो तुमने ज़रूर सुना होगा। ये किताब तुम्हें शाहजहाँ द्वारा बसाई गई दिल्ली की सैर कराएगी जिससे तुम्हें दिल्ली के इतिहास के एक हिस्से के बारे में जानने को मिलेगा। शाहजहाँनाबाद (दिल्ली) का इतिहास जानने के साथ-साथ तुम्हें यह भी पता चलेगा कि पहले के ज़माने में लोगों का रहन-सहन और तौर-तरीक़े कैसे होते थे। मैं चाहूँगी कि इस किताब को पढ़ने के बाद तुम यह सोचने और समझने की कोशिश करो कि तब से अब में हमारे रहन-सहन और व्यवहार में क्या-क्या अन्तर आ गए हैं। क्या कुछ ऐसी पुरानी बातें हैं जिन्हें हमें अपने आज के जीवन में अपना लेना चाहिए या नहीं? शाहजहाँनाबाद अभी भी 'चाँदनी चौक' के नाम से जिन्दा है। तुम्हारा घर जिस जगह पर है वहाँ अगर कोई पुरानी इमारत या उसके खंडहर हैं तो ये पता लगाने की कोशिश करो कि उसके पीछे क्या कोई इतिहास की कहानी छिपी हुई है। इस खोजबीन में बहुत मज़ा आएगा।

इस किताब में तुम्हें क्या अच्छा लगा और क्या बुरा—इस बारे में अगर कुछ कहना चाहो तो नीचे दिए पते पर लिख भेजो। श्री द्विजेन्द्रनाथ कालिया के पास चाँदनी चौक में मनाए जाने वाले त्यौहारों-उत्सवों और वहाँ की सड़कों से निकलने वाले जुलूसों की बहुत-सी स्लाइड्स हैं जिन्हें देखकर मुझे यह किताब लिखने की बात सूझी। अगर तुम ये स्लाइड शो देखना चाहो तो हमें लिखो। हमें तुमसे मिलकर और तुम्हें ये स्लाइड्स दिखाकर अच्छा लगेगा।

श्री अनुपम मिश्र के प्रयत्नों और मदद से ही चाँदनी चौक की ये कहानी तुम तक किताब के रूप में पहुँच पा रही है। किताब में दिए गए चित्रों और नक्शों को श्री सरनजीत सिंह सरना ने तुम्हारे लिए बहुत लगन के साथ तैयार किया है। मैं इन दोनों लोगों की आभारी हूँ। श्री सरना ने ये चित्र एम० एम० केय, जगमोहन और नारायणी गुप्ता की किताबों में दिए गए चित्रों के आधार पर तैयार किए हैं। इन्हें मेरा धन्यवाद।

1936, फ़व्वारा, चाँदनी चौक, दिल्ली-6

—मुकुल प्रियदर्शिनी

बड़ों से

एक शहर, एक क्षेत्र देखते-ही-देखते कितनी तेज़ी से बदल जाता है और इस बदलाव का पर्यावरण पर, लोगों पर क्या असर पड़ता है—इसे देखने की एक कोशिश है यह छोटी-सी पुस्तिका। लिखी गई है बच्चों के लिए लेकिन काम बड़ों के भी आ सकती है। हम बड़ों की यह मजबूरी रही कि वे अपने जीवन में बदलावों को देखते रहे चुपचाप। तब ये बदलाव ही विकास के प्रतीक थे। जब उन बदलावों के कारण पर्यावरण पर असर पड़ने लगा, गड़बड़ियाँ सामने आने लगीं तो इस पीढ़ी ने बिना सोचे-समझे 'पर्यावरण बचाओ' का नारा लगा दिया। इस तरह पर्यावरण की बात भी कामचलाऊ ढंग से होती रही। वे प्रश्न नहीं उठ पाए जो उठने चाहिए थे। नई पीढ़ी के सामने पुरानी चुप्पी का बोझ नहीं है। वह सम्भवतः पर्यावरण के विषय को कामचलाऊ ढंग से न देखकर उसके पीछे के प्रश्नों को भी समझेगी।

पुस्तिका चाँदनी चौक के माध्यम से दिल्ली शहर के बदलते रहन-सहन, पर्यावरण पर उसके असर का वर्णन तो सरल ढंग से करती है, उन कठिन प्रश्नों को भी नई पीढ़ी के सामने रखती हैं जिनका उत्तर पुरानी पीढ़ी नहीं दे पाई है। हमारा प्रयत्न होगा इस तरह की और भी सामग्री बच्चों के लिए हम तैयार कर सकें ताकि विकास के नाम पर नष्ट हो रही संस्कृति को बचाने के प्रयत्न सोच-समझकर हो सकें।

गांधी शान्ति केन्द्र, हैदराबाद

—राधाकृष्ण

मनकू, आओ आज अपने दिल्ली शहर के बारे में कुछ बात की जाए। अगर मैं पूछूं कि आज तुम जिस दिल्ली में रहती हो उसके बारे में क्या जानती हो, तो तुम आसानी से बता दोगी कि दिल्ली के कई रूप-रंग हैं: लोगों ने यहाँ अपने घर झुग्गियों में भी बसाए हुए हैं और आलीशान बंगलों में भी। कहीं एक मंज़िला इमारतें हैं तो कहीं बीस मंज़िला। कहीं तंग गलियाँ हैं तो कहीं हरे-भरे पेड़ों से सजी चौड़ी सड़कें। सड़कों पर बैलगाड़ियों की टप-टप भी सुनाई देती है और बसों की धड़धड़ाहट भी। कहीं पटरी बाजार की चहल-पहल है तो कहीं जगमगाती दुकानों की शान।

तुम्हें मालूम है आज की दिल्ली से पहले दिल्ली कई बार बस और उजड़ चुकी है! इतिहासकार नौ प्रमुख दिल्लियों के नाम गिनाते हैं: (1) लालकोट (महरौली), (2) सीरी, (3) तुग़लक़ाबाद, (4) जहाँपनाह, (5) फ़िरोज़ाबाद, (6) लोदी वंश की दिल्ली, (7) दिल्ली शेरशाही, (8) शाहजहाँनाबाद और (9) ब्रिटिश दिल्ली। हमारी आज की दिल्ली में ये सभी नौ दिल्लियाँ समा गई हैं।

अब ज़रा कल्पना करो कि आज से दो-तीन सौ साल पहले की दिल्ली कैसी रही होगी। आज़ादपुर से लेकर वसंत कुंज तक और ओखला से लेकर विकासपुरी तक हम जिन बस्तियों-मोहल्लों में रहते हैं उनमें से ज्यादातर या तो छोटे-छोटे गाँव थे या घने जंगल। लेकिन अभी भी दिल्ली में कई ऐसी कॉलोनियाँ हैं जो दो-तीन सौ साल पहले भी उतनी ही आबाद थीं जितनी आज हैं। इन बस्तियों ने कई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ देखी हैं। इसीलिए दिल्ली के इतिहास की चर्चा इन जगहों के बिना नहीं हो सकती। मनकू, अगर मैं तुमसे ऐसी किसी जगह का नाम लेने को कहूँ तो तुम्हारी ज़बान पर सबसे पहले नाम आएगा चाँदनी चौक का। है न? तो आओ आज चाँदनी चौक चलें।

हम लालक़िले की ओर पीठ करके खड़े हों तो हमारे दाईं ओर की सड़क अन्तर्राज्यीय बस-अड्डे की ओर जाती है, बाईं सड़क दरियागंज और सामने की सड़क चाँदनी चौक जाती है। लालक़िले के पीछे रिंग रोड है। सन् 1648 में जब लालक़िला बना था तो तुम्हारी दिल्ली का नाम शाहजहाँनाबाद था क्योंकि मुग़ल बादशाह शाहजहाँ ने दिल्ली को बसाया था। लालक़िला भी शाहजहाँ ने ही

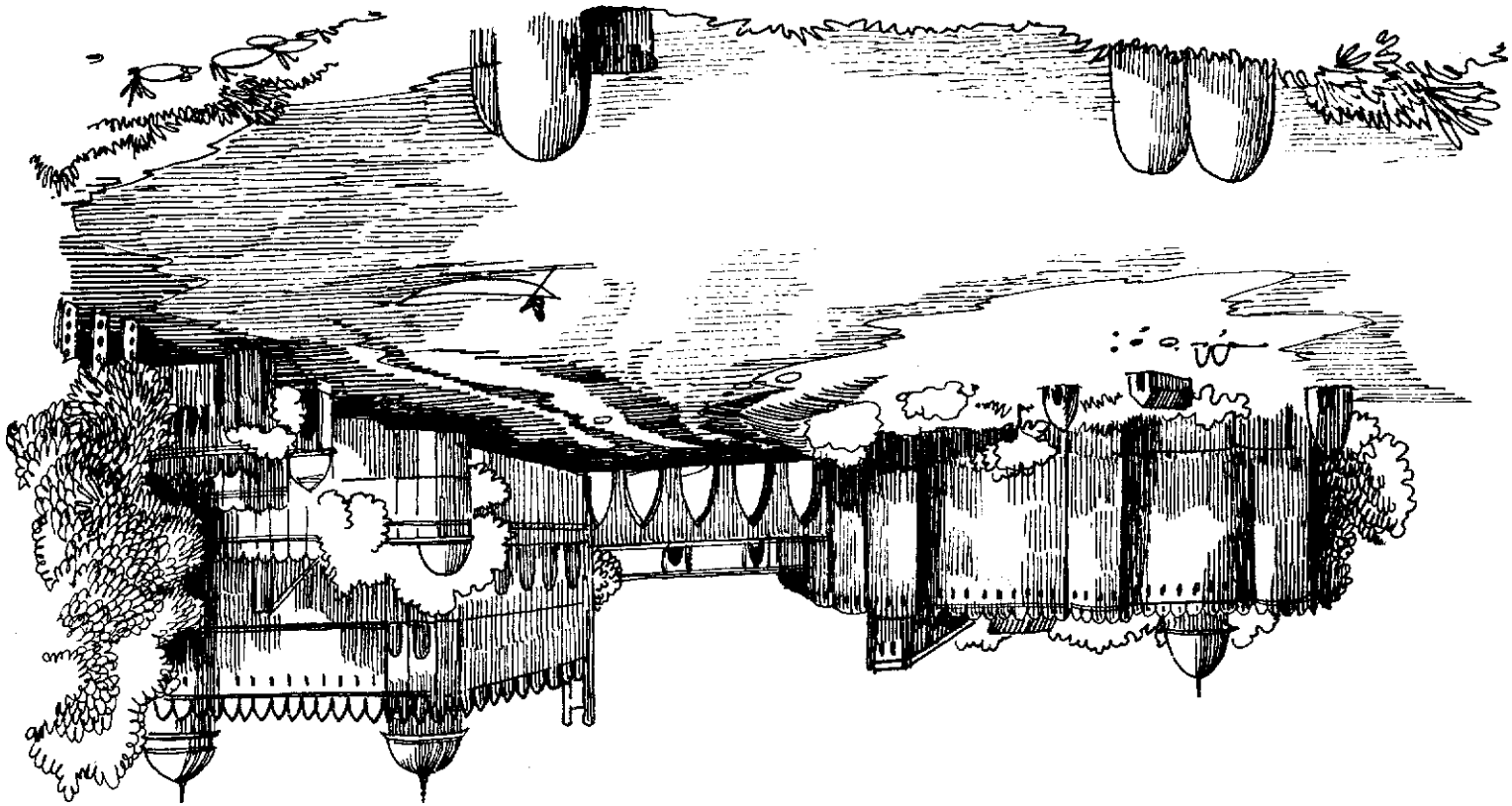

बनवाया था। आज अगर तुम बस में दिल्ली विश्वविद्यालय से जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय जाना चाहो तो तुम्हें कम से कम डेढ़ घण्टा लगेगा। लेकिन शाहजहाँ के ज़माने में दिल्ली बहुत छोटी-सी थी। सिर्फ़ सात मील में फैली हुई। आज दिल्ली का क्षेत्रफल चार सौ मील है। तब की दिल्ली तीन तरफ़ से ऊँची, मज़बूत दीवार से घिरी थी। इसीलिए इस दीवार के भीतर की बस्ती को अंग्रेज़ी में 'वॉल्ड सिटी' भी कहा जाता है। धनुष के आकार की इस दीवार में सात बड़े-बड़े दरवाज़े और कई खिड़कियाँ थीं। अगर हम क्रम से इन दरवाज़ों को गिनाएँ तो तुम्हें अन्दाज़ लगेगा कि शाहजहाँ की दिल्ली कितनी और कहाँ तक फैली हुई थी : (1) कश्मीरी गेट इलाक़े में कश्मीरी दरवाज़ा, (2) मोरी गेट में मोरी दरवाज़ा, (3) खारी बावली में काबुली दरवाज़ा, (4) वहीं पर लाहौरी दरवाज़ा, (5) अजमेरी गेट में अजमेरी दरवाज़ा, (6) तुर्कमान गेट में तुर्कमान दरवाज़ा और (7) दिल्ली गेट में दिल्ली दरवाज़ा। बाद में सड़कें आदि बनाने के लिए अंग्रेज़ों के राज में इस दीवार को कई जगह से तोड़ दिया गया था। लेकिन आज भी तुम्हें यह दीवार कहीं-कहीं उसी शान से खड़ी मिल जाएगी। जैसे—बस अड्डे और रिट्ज़ सिनेमा के बीच में, दरियागंज के रिंग रोड वाले सिरे पर। चौथी दीवार के रूप में विशालकाय लालक़िला था। लालक़िले के ठीक पीछे रिंग रोड पर यमुना बहा करती थी। आज जहाँ बसों, कारों, साइकिलों का काफ़िला नज़र आता है, वहाँ कभी नावें चला करती थीं। है न मज़ेदार बात !

अब आओ चलें वापिस लालक़िले। जामा मस्जिद और लालक़िले के बीच एक काफ़ी चौड़ी सड़क (नेताजी सुभाषचन्द्र बोस मार्ग) है जो पुरानी दिल्ली को नई दिल्ली से जोड़ती है। 17वीं सदी में इस चौड़ी सड़क का कोई नामो-निशान नहीं था। इसकी जगह पर लालक़िले के दिल्ली दरवाज़े से लेकर जामा मस्जिद के पूर्वी दरवाज़े तक एक चौड़ी सड़क थी जिसके दोनों तरफ़ क़िस्म-क़िस्म की दुकानें थीं। इस इलाक़े को ख़ास बाज़ार कहा जाता था। शायद शाही परिवार के लोग इस बाज़ार में ख़रीदारी करते हों, इसीलिए इसका नाम ख़ास बाज़ार पड़ा। जामा मस्जिद के बाईं ओर का मैदान परेड ग्राउण्ड कहलाता है जहाँ हर साल सर्कस और रामलीला होती है। यह भी घनी आबादी वाला इलाक़ा हुआ करता था जिसे ख़ानम-का बाज़ार कहते थे। ये दोनों बाज़ार सन् 1857 के स्वाधीनता-संग्राम के बाद उजाड़ दिए गए।

लालक़िले के सामने बाईं तरफ़ जामा मस्जिद है जिसकी गिनती संसार की

प्रमुख मस्जिदों में होती है। ये मस्जिद सन् 1656 में बनकर तैयार हुई थी। इसमें तीन आलीशान दरवाज़े हैं। पूर्वी दरवाज़े के सामने 'मीना बाज़ार' है। मुग़ल ज़माने में बादशाह और उनका परिवार इसी दरवाज़े से नमाज़ अदा करने के लिए मस्जिद में आते थे। जनता केवल उत्तरी और दक्षिणी दरवाज़े से अन्दर आ सकती थी। उस समय पूर्वी दरवाज़े पर मुर्ग़ियाँ और कबूतर आदि बिकते थे। दक्षिणी दरवाज़े पर कपड़ा बेचने वाले अपनी फेरी लगाकर बैठते थे और उत्तरी दरवाज़े पर तमाशा दिखाने वाले और क़िस्से सुनाने वाले। इसी दरवाज़े पर नान और कबाब बेचने वालों की भी क़तार होती थी। लोग टोलियाँ बनाकर तमाशा देखने और कहानियाँ सुनने के लिए आते थे। साथ ही साथ नान और कबाब का मज़ा भी लेते थे। कुछ साल पहले तक भी इक्का-दुक्का क़िस्सागो शाम के वक़्त जामा मस्जिद के आसपास दिखाई देते थे। पर आजकल ज़िन्दगी की रफ़्तार इतनी तेज़ हो गई है कि हमारे पास इत्मीनान से बैठकर कहानी सुनने का वक़्त ही नहीं रहा। अगर वक़्त हो भी तो हम सिनेमा, टी०वी० और वीडियो देखना पसन्द करते हैं। इसीलिए क़िस्सा-गोई की परम्परा अब ख़त्म हो चली है।

ये तो हुई देश की सबसे बड़ी मस्जिद की बात। थोड़ी ही देर में हम चाँदनी चौक का सफ़र शुरू करेंगे। पहले चाँदनी चौक चार हिस्सों में बँटा हुआ था—लालक़िले से दरीबा तक उर्दू बाज़ार, दरीबे से कोतवाली तक फूलमंडी, कोतवाली से घन्टाघर तक जौहरी बाज़ार और बाक़ी चाँदनी चौक। अब लालक़िले के ठीक सामने से शुरू होकर फ़तेहपुरी मस्जिद पर ख़त्म होने वाली सड़क को चाँदनी चौक कहते हैं। सड़क के दाएँ-बाएँ जो गलियों में से गलियाँ निकलती चली गई हैं, उनके अलग-अलग नाम हैं। इन नामों की कहानी बहुत मज़ेदार है। 'मालीवाड़ा' में किसी ज़माने में सिर्फ़ माली रहा करते थे, इसीलिए इस गली का नाम 'मालीवाड़ा' पड़ गया। इसी तरह 'सूईवालान' में सूइयाँ, और 'चूड़ीवालान' में चूड़ियाँ बनती-बिकती थीं। 'गंधी गली' में इत्र-ख़ुशबू बनाने वाले लोग रहते थे। 'किनारी बाज़ार' में गोटा-किनारी बिका करती थीं। 'नौघरा' नाम की गली में केवल नौघर थे और 'सत्ताइसघरा' में सत्ताइस घर। 'खारी बावली' में खारे पानी की एक बावली थी।* 'हाथीख़ाना' में बादशाह के हाथी बाँधे जाते थे। कुछ गलियों के नाम शहर की बड़ी हस्तियों, कलाकारों आदि के नाम पर भी थे। 'कूचा उस्ताद दाग़' में उर्दू शायर

---

* चौड़ा कुआँ जिसके चारों ओर नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हों।

दाग़ का पुश्तैनी घर था। 'फाटक हबश ख़ाँ' में शाहजहाँ के सहायक हबश ख़ाँ की हवेली थी।

आओ, लालक़िले के चौराहे को पार करके चाँदनी चौक की सड़क पर चलें। यहाँ सड़क को दो हिस्सों में बाँटती हुई एक नहर होती थी। यह नहर लाहौरी दरवाज़े से शुरू होकर लालक़िले के भीतर ख़त्म होती थी। शाहजहाँ के ज़माने में इस नहर को फ़ैज़ नहर के नाम से जाना जाता था। मोहम्मद शाह रंगीले के शासन-काल तक आते-आते यह नहर सूख गई थी। तब अवध के नवाब सआदत ख़ाँ ने इसे दोबारा शुरू किया था और इसका नाम नहर सआदत ख़ाँ पड़ गया था। यह नहर केवल चाँदनी चौक की ख़ूबसूरती बढ़ाने के लिए नहीं बनाई गई थी। सारे शहर की पानी की ज़रूरतें इसी नहर से पूरी होती थीं। सन् 1910 में इस नहर को बन्द कर दिया गया। नहर के दोनों ओर घने-छायादार पेड़ होते थे जिनके नीचे सब्ज़ी और फल वाले फेरी लगाकर बैठते थे। राहगीर फल ख़रीदकर खाते थे और पेड़ों के नीचे बैठ-सो-बतियाकर थकान मिटाते थे। आजकल इन सड़कों पर शाम के समय पूरे-पूरे बाज़ार लगते हैं जहाँ कपड़े से लेकर अटैचियों तक सभी कुछ मिलता है। लेकिन अब जो आपाधापी यहाँ दिखाई देती है वह पहले नहीं थी क्योंकि तब न तो शहर की इतनी आबादी थी और न ही वाहनों की इतनी आवाजाही थी। पहले इस सड़क पर आधे घंटे में पाँच सवारियाँ दिखाई देती थीं, अब पाँच मिनट में पचास सवारियाँ गुजर जाती हैं। अब हम लालक़िले से फ़व्वारे तक भी रिक्शे में जाना पसन्द करते हैं, लेकिन उस समय लोग चार-चार किलोमीटर का सफ़र बहुत आसानी से तय कर लिया करते थे क्योंकि यातायात के साधन कम होने के कारण इतना लम्बा सफ़र अखरता नहीं था और ज़िन्दगी की रफ़्तार भी आज जैसी तेज़ नहीं थी।

चाँदनी चौक की सड़क के बाईं ओर जैन मन्दिर है। लाल पत्थरों से बना होने के कारण इसे 'लाल मन्दिर' भी कहा जाता है। मन्दिर की इमारत तो ज़्यादा पुरानी नहीं है लेकिन पूजास्थल के रूप में इसकी स्थापना औरंगज़ेब के ज़माने में ही हो गई थी। कहा जाता है कि एक जैन सिपाही ने पूजा के लिए एक तम्बू गाड़कर उसमें मूर्ति रख दी थी। बाद में वहाँ मन्दिर बना दिया गया। चाँदनी चौक के इस हिस्से को उस वक़्त उर्दू बाज़ार कहा जाता था। शायद इसी कारण इस मन्दिर का नाम भी तब उर्दू मन्दिर था। इस मन्दिर में अभी भी सन् 1648 की एक मूर्ति रखी हुई है। मन्दिर के अन्दर पक्षियों के लिए एक अस्पताल भी है। जैन मन्दिर के बग़ल में गौरीशंकर मन्दिर है। इसे एक मराठा ब्राह्मण अप्पा गंगाधर ने सन् 1761 में

बनवाया था। उस समय दिल्ली में मराठों का राज था। इस मन्दिर का पुराना नाम शिवालय अप्पा गंगाधर था जो आज भी तुम मन्दिर की दीवार पर खुदा हुआ देख सकती हो। बाद में इसका नाम बदलकर गौरीशंकर मन्दिर कर दिया गया।

कुछ क़दम आगे चलने पर सड़क के दाईं ओर कुमार सिनेमा हॉल है। उसके पीछे भगीरथ पैलेस है जो बिजली के साज़ो-सामान और दवाइयों का बहुत बड़ा थोक बाज़ार है। यह इमारत सन् 1830 में बनी थी। उस समय इसे 'बेगम समरू की कोठी' कहा जाता था। इसके चारों तरफ़ एक बड़ा और सुन्दर बगीचा हुआ करता था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी बिकते-बिकते यह कोठी एक व्यापारी लाला भगीरथमल को मिली। तभी से इसका नाम भगीरथ पैलेस पड़ गया।

मनकू, इस समय तुम सड़क के दाईं ओर स्टेट बैंक के पास खड़ी हो। अगर तुम सड़क के बाईं ओर देखो तो तुम्हें एक चौड़ी सड़क जामा मस्जिद की दिशा में जाती दिखेगी। इस सड़क को एस्प्लेनेड रोड कहते हैं। एस्प्लेनेड का मतलब होता है खुली जगह। इस जगह को एस्प्लेनेड शायद इसलिए कहा गया क्योंकि 1857 से पहले यहाँ घनी आबादी थी जिसे हटाकर ये सड़क बनाई गई। आज इस इलाक़े को साइकिल मार्किट के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि यहाँ साइकिलों का बाज़ार है। इस सड़क की दो और ख़ासियतें हैं। एक तो यहाँ फ़ोटोग्राफ़रों की बहुत-सी दुकानें हैं। दूसरा, इस छोटी-सी सड़क पर छः मन्दिर हैं—गोपालजी का मन्दिर, जगन्नाथ मन्दिर, हनुमान मन्दिर, दाऊजी का मन्दिर, सत्यनारायण मन्दिर और रामचन्द्रजी का मन्दिर। लगभग सभी मन्दिर सौ साल से ज़्यादा पुराने हैं।

अब एस्प्लेनेड रोड से हम वापिस चलते हैं चाँदनी चौक की सड़क पर। दाईं ओर कुमार सिनेमा हॉल के बगल में सैंट्रल बैपटिस्ट चर्च है। यह चर्च 1860 में मिशनरियों ने बनाया था।

आओ अब सड़क पार करें। बाईं तरफ़ जो गली अन्दर जा रही है इसे दरीबा कलां कहते हैं। दरीबे के बारे में कुछ बताने से पहले गली के शुरू में बनी जलेबी की की दुकान पर चलते हैं और ज़रा पेट-पूजा करते हैं। लोग दूर-दूर से यहाँ की जलेबी खाने के लिए चाँदनी चौक आते हैं। ये दुकान सन् 1911 में खुली थी और इस समय इस दुकान को तीसरी पीढ़ी चला रही है।

'दरीबा' का अर्थ 'बाज़ार' होता है और 'कलां' का अर्थ 'बड़ा'। तो दरीबा कलां 'बड़ा बाज़ार' हुआ। ये हीरे-जवाहरात के प्रमुख बाज़ारों में से है। दरीबे के शुरू में एक बड़ा-सा दरवाज़ा बना हुआ था जिसे ख़ूनी दरवाज़ा कहते थे। जब

नादिरशाह ने क़त्ले-आम का हुक्म दिया था तो उसके सिपाही इसी दरवाज़े में से घुस आए थे और जो-जो सामने पड़ता गया, उसे मारते चले गए। सन् 1857 के लड़ाई के दौरान अंग्रेज़ों ने इस दरवाज़े को तोप से उड़ा दिया था।

अब बारी आती है सीसगंज गुरुद्वारे की। ये दिल्ली के तीन सबसे बड़े गुरुद्वारों में से एक है। सुबह तीन बजे से लेकर रात के ग्यारह बजे तक हज़ारों भक्त इस गुरुद्वारे में रोज़ 'मत्था टेकने' आते हैं। सिक्खों के नौवें गुरु, गुरु तेगबहादुर को औरंगज़ेब मुसलमान बनाना चाहता था, लेकिन गुरु तेगबहादुर ने अपना धर्म बदलने से इनकार कर दिया। इस बात से नाराज़ होकर औरंगज़ेब ने सन् 1675 में इसी जगह पर गुरु तेगबहादुर का सिर कटवा दिया। जिस बड़ के पेड़ के नीचे गुरु तेगबहादुर शहीद हुए थे, उस पेड़ का तना आज भी गुरुद्वारे में एक शीशे के बक्स में रखा हुआ है। गुरु तेगबहादुर की याद में गुरुद्वारा तो सन् 1675 में ही बन गया था लेकिन गुरुद्वारे की जो इमारत इस समय तुम देख रही हो, वह इसी शताब्दी में तैयार हुई थी। आजकल आसपास की दुकानें गिराकर इस गुरुद्वारे को और बड़ा करने का काम चल रहा है।

गुरुद्वारा सीसगंज के बगल में गुरु तेगबहादुर निवास है। एक ज़माने में यहाँ कोतवाली हुआ करती थी। मुग़ल ज़माने में कोतवाली आज की जेलों और थानों से थोड़ी भिन्न होती थी। शहर के कोतवाल का भी बहुत रुतबा होता था। कोतवाली के सामने के अहाते में जो पीपल का पेड़ दिखाई दे रहा है इसी के पास चबूतरे पर बैठकर कोतवाल साहब लोगों के मुक़दमे सुना करते थे। अपराध करने वाले को जनता के सामने ही सज़ा दी जाती थी। लड़ाई के समय कोतवाली के सामने सड़क के बीचों-बीच एक फाँसी का तख़्ता बनाया गया था। आज़ादी के लिए बग़ावत करने वालों को यहीं फाँसी दी जाती थी। सन् 1983 में कोतवाली यहाँ से हटाकर, ये इमारत गुरुद्वारा सीसगंज को दे दी गई। अब इस इमारत में गुरुद्वारे आने वालों के लिए धर्मशाला और एक लड़कियों का स्कूल है। लेकिन आज भी इस इलाक़े को कोतवाली के नाम से जाना जाता है। आजकल इस इमारत की तोड़फोड़ करके यहाँ कई मंज़िल की इमारत बनाई जा रही है।

कोतवाली इलाक़े से कई दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जुड़ी हुई हैं। आओ सबसे पहले बात करें कोतवाली या गुरु तेगबहादुर निवास की। गुरु तेगबहादुर शहीद होने से पहले चालीस दिन तक कोतवाली में क़ैद रहे थे। सन् 1857 की लड़ाई में मेजर हडसन ने हिन्दुस्तान के बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र के तीन बेटों को मरवा-

कर उनके सिर बादशाह को भेज दिए थे। लोगों को दिखाने के लिये लाशों के धड़ कोतवाली की दीवार पर लटका दिए थे। इसी तरह मशहूर शायर मिर्ज़ा ग़ालिब को भी एक बार जुआ खेलने के शक में पकड़कर इस कोतवाली में बन्द कर दिया गया था। लेकिन शहर के नामी-गिरामी लोगों के कहने पर बाद में छोड़ दिया गया था।

गुरु तेगबहादुर निवास की दीवार से सटी हुई है सुनहरी मस्जिद। ये मस्जिद सन् 1721 में बनी थी। सन् 1739 में इसी मस्जिद में खड़े होकर नादिरशाह ने अपनी तलवार म्यान में से निकाली थी और क़त्ले-आम का हुक्म दिया था।

सुनहरी मस्जिद और गुरु तेगबहादुर निवास के सामने तिराहे के बीचों-बीच फ़व्वारा है जिसे भाई मतिदास चौक भी कहते हैं। इसी जगह पर औरंगज़ेब ने गुरु तेगबहादुर की शहादत से एक दिन पहले भाई मतिदास को आरे से कटवाकर मार डाला था। सन् 1872 में जब सर नॉर्थ ब्रुक दिल्ली आए तो उनके स्वागत में इस तिराहे पर एक फ़व्वारा बनवाया गया। फ़व्वारा बनने के बाद ईसाई पादरी अक्सर यहाँ लोगों को इकट्ठा करके ईसाई धर्म का प्रचार करते थे ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग ईसाई धर्म को अपनाएँ। कुछ वर्षों के बाद मुस्लिम संस्थाओं ने फ़व्वारे पर आकर ईसाइयों से धार्मिक बहस (शास्त्रार्थ) करना शुरू कर दिया। सन् 1900 तक आते-आते आर्यसमाज के प्रचारक भी इस बहस में शामिल हो गए। अब इस फ़व्वारे पर सिक्ख और आर्यसमाजी दोनों ही लोग अपना-अपना अधिकार मानते हैं क्योंकि सिक्ख कहते हैं कि भाई मतिदास सिक्ख थे और आर्यसमाजी मानते हैं कि वे हिन्दू थे। आज भी हर शनिवार को सीसगंज गुरुद्वारे की सफ़ाई के साथ-साथ सिक्ख लोग इस फ़व्वारे को भी धोते-साफ़ करते हैं और इसे शीश नवाकर सफ़ाई की रस्म पूरी करते हैं।

फ़व्वारे के पूर्व में मैजेस्टिक सिनेमा हॉल है। यह दिल्ली का सबसे पहला सिनेमा हॉल था। इसका निर्माण सन् 1898 में हुआ था। तब इसका नाम रामा थियेटर हुआ करता था।

मुझे मालूम है मनकू कि इस समय तुम्हारा ध्यान सड़क के पार है। चलो पहले वहीं चलते हैं। कोने पर है अन्नपूर्णा भण्डार। सन् 1929 से दिल्ली वाले यहाँ की बंगाली मिठाइयों का मज़ा ले रहे हैं। कलकत्ता की अच्छी-से-अच्छी दुकान से भी यहाँ की मिठाइयाँ टक्कर लेती हैं। ये लोग शंख के आकार का बड़ा-सा संदेश बनाते हैं जिसे तुम चाहकर भी अकेले ख़त्म नहीं कर पाओगी और हारकर नन्दू को भी

उसका हिस्सा देना पड़ेगा।

तिराहे से स्टेशन की तरफ़ जो सड़क जा रही है उसे एच० सी० सेन रोड कहते हैं। इस सड़क के शुरू में ही एच० सी० सेन क्लिनिक है। ये सड़क और क्लिनिक दोनों ही डॉ० हेमचन्द्र सेन के नाम पर हैं जो दिल्ली के पहले बंगाली डॉक्टर थे। डॉ० सेन ने इण्डियन मेडिकल हॉल नाम की दिल्ली की पहली दवाओं की दुकान यहीं पर सन् 1880 में खोली थी। एक ज़माने में यह दुकान नीडो रेस्टो-रेण्ट से लेकर कटरा लच्छूसिंह तक फैली हुई थी। इसके अलावा सन् 1883 में मैजेस्टिक के नज़दीक आइ० एम० एच० प्रेस भी शुरू की गई थी। पहले इस प्रेस में 26 भाषाओं की किताबें छपती थीं। अभी हाल ही में इस प्रेस को यहाँ से हटा दिया गया क्योंकि दिल्ली में पिछले कुछ बरसों से पुरानी और बड़ी इमारतों को गिराकर नये क़िस्म की इमारतें बनाने का रिवाज चल निकला है। इसीलिए चाँदनी चौक में कई गलियाँ, कटरे और हवेलियाँ तेज़ी से ग़ायब हो रहे हैं। इन यादगार इलाक़ों और इमारतों की जगह ले रहे हैं दड़बेनुमा दफ़्तर-दुकानें। कितनी बुरी बात है कि हम मुनाफ़ा कमाने के लिए अपनी शानदार विरासत को अपने हाथों से नष्ट कर रहे हैं और अपने शहर की ऐतिहासिक ख़ूबसूरती को भद्दी इमारतों के जंगल का रूप दे रहे हैं। इसी सिलसिले में हम अपने अनगिनत पेड़ों को काट चुके हैं और कुओं को पाट चुके हैं। ज़रा सोचो तो, कश्मीरी गेट के पास के इलाक़े को हम तीस हज़ारी क्यों कहते हैं! एक ज़माने में वहाँ तीस हज़ार पेड़ हुआ करते थे। इसी प्रकार न तो खारी बावली में अब कोई बावड़ी बची है और न ही लाल कुआँ इलाक़े में कोई कुआँ। सड़क के बाईं ओर गांधी मैदान है। इसकी बात चाँदनी चौक की मुख्य सड़क पर जाकर करेंगे।

जैसा कि मैं पहले बता चुकी हूँ, कोतवाली से लेकर घंटाघर तक का हिस्सा जौहरी बाज़ार कहलाता था। चाँदनी चौक बसने से लेकर सन् 1857 की लड़ाई तक जौहरियों, सर्राफ़ों और व्यापारियों की दुकानें इसी सड़क पर हुआ करती थीं। चीन, ईरान, तुर्की, मिस्र और यूरोप के अनेक देशों की मुद्राओं और माल की अदला-बदली यहाँ हुआ करती थी। बड़े दुकानदारों के यहाँ दलाल हुआ करते थे। ये दलाल अपनी नफ़ीस भाषा और विनम्र अंदाज़ से ख़रीददारों का मन मोह लेते और ख़रीददार उनकी दुकान पर खिंचा चला जाता था। आज भी कपड़े की दुकानों के ऐसे दलाल तो बहुत मिलते हैं लेकिन अब ख़रीददारों को लुभाने की कला नहीं रही।

चाँदनी चौक की सजी-सँवरी दुकानों के बाहर दोनों तरफ़ फल और सब्ज़ी वाले बैठते थे जो तुकबन्दियों में गा-गाकर अपना माल बेचते थे। उनके बोल और लय इतनी आकर्षक होती थी कि न ख़रीदने वाले भी खड़े होकर फेरीवालों की पुकार ज़रूर सुनते थे। उस समय शहर इतना छोटा और आबादी इतनी कम थी कि पुराने और बुज़ुर्ग दुकानदार अपने हर ग्राहक को पहचानते थे। ग्राहक भी दुकानदारों और फेरीवालों की इज्ज़त करते थे। वे एक-दूसरे को 'चचा', 'मियाँ', 'क़िबला', 'पण्डितजी', 'बीबी', 'अम्माँ', 'बहना', 'सुहागवाली' कहकर बुलाते थे। नाइयों, मालिशवालों, मेहतरों और महरियों से भी ऐसा ही अपनापे का रिश्ता होता था। ये परम्परा केवल दिल्ली में ही नहीं, देश के और भागों में भी थी। इस सिलसिले में तुम्हें एक क़िस्सा सुनाती हुँ। राजा जुगलकिशोर दिल्ली के बड़े रईसों में गिने जाते थे। अपने बेटे की शादी में उन्होंने पूरी दिल्ली को दावत पर बुलाया। अमीरों के घर न्यौता भेजा और बाक़ी जनता के लिए ढिंढोरा पीटकर ऐलान करवाया कि सब शादी में आएँ। उन दिनों जगह-जगह पानी के प्याऊ बने होते थे और प्याऊ के पास ही भुने चने बिकते थे। राहगीर चने खाकर पानी पी लेते थे। बहादुरशाह जफ़र मार्ग पर तिलक ब्रिज के पास एक मस्जिद है। इसके सामने एक प्याऊ थी जिसमें एक बूढ़े पण्डितजी लोगों को पानी पिलाते थे। राजा जुगलकिशोर के एक कारिंदे ने महाराज से पूछा, "महाराज, राजा जुगलकिशोर के यहाँ दावत पर आप भी आ रहे हैं न?" पण्डितजी स्वाभिमानी थे। वे बोले, "हम क्यों जाएँ राजा की दावत में? अगर वे हमारी प्याऊ पर पानी पीने वालों में से होते तो हम ज़रूर आते।" महाराज की यह बात राजा जुगलकिशोर तक पहुँच गई। वे फ़ौरन अपने रथ में बैठे और चल दिए प्याऊ की तरफ़। थोड़ा पहले ही रथ से उतरकर पैदल चलते हुए प्याऊ तक आए, भुने चने ख़रीदकर खाए और महाराज के सामने हाथ की ओक बनाकर पानी पीने के लिए झुक गए। पानी पीने के बाद राजा जुगलकिशोर ने हाथ जोड़कर विनम्र स्वर में कहा, "मैंने आपकी प्याऊ का पानी पी लिया है। अब तो आप मेरी कुटिया पर पधारेंगे न महाराज?" महाराज हैरानी से बोले, "तुम कौन हो भाई?" राजा ने जवाब दिया, "मुझे जुगलकिशोर कहते हैं। अगले सोमवार को आपको मेरे यहाँ न्यौते पर आना पड़ेगा।" पण्डितजी राजा के व्यवहार से भावुक हो उठे। वे बोले, "क्यों नहीं आऊँगा, राजा साहब? आपके घर का प्रसाद पाना मेरा सौभाग्य होगा।" ध्यान दो मनकू कि उस ज़माने में और आज के ज़माने में कितना फ़र्क है। तब उम्र और

प्रतिभा के हिसाब से यह तय होता था कि कौन छोटा है और कौन बड़ा। आज यही चीज़ें सिर्फ़ अमीरी-ग़रीबी और जाति के हिसाब से तय होती हैं। बुरी बात है न ?

आओ आगे बढ़ें। फ़व्वारे के तिराहे से आगे चाँदनी चौक की सड़क पर चलें तो बाईं ओर घण्टेवाला हलवाई की दुकान है। यह दुकान सन् 1790 में खुली थी। आज इस दुकान को सातवीं पीढ़ी चला रही है। इसी दुकान के बग़ल में एक गली अन्दर चली गई है जिसमें राजा जुगलकिशोर की हवेली थी। आज वहाँ साड़ियों और अटैचियों की दुकानें हैं।

कुछ क़दम आगे जाने पर बाएँ हाथ की तरफ़ ही पड़ती है मशहूर पराँठे-वाली गली। इस गली का पुराना नाम दरीबा ख़ुर्द था। एक समय था जब इस छोटी-सी गली में ग्यारह पराँठे की दुकानें थीं। अब केवल तीन दुकानें रह गई हैं। बाक़ी लोगों ने साड़ियों के या दूसरे व्यापार शुरू कर दिए। सबसे पहली पराँठे की दुकान 1875 में खुली थी, वह दुकान आज भी चल रही है। यहाँ बैठकर पराँठा खाने का अपना मजा है क्योंकि एक तो यहाँ के पराँठे थोड़े भिन्न तरीक़े से बनाए जाते हैं। दूसरा, परोसने और खिलाने का ढंग ऐसा होता है कि लगता है जैसे हम अपने घर में खाना खा रहे हों। मनकू जी अभी तो आपने जलेबी और सन्देश की डकार भी नहीं ली है, इसलिए पराँठा खाने फिर कभी आएँगे। गली के आख़िर में बाईं सड़क किनारी बाजार और दाईं सड़क मालीवाड़ा चली जाती है।

पराँठेवाली गली के बग़ल में है मोती बाज़ार। एक ज़माने में यहाँ क़ीमती मोतियों की ख़रीद-फ़रोख़्त होती थी। अब यहाँ भी कपड़े की दुकानें ज़्यादा हैं।

मोती बाज़ार से सड़क पार करके कुछ क़दम चलें तो दाईं ओर एक गली पड़ती है जिसे कटरा धूलिया कहते हैं। जब भी स्वतन्त्रता-आन्दोलन की बात चलती है, इस गली का नाम ज़रूर लिया जाता है। 23 दिसम्बर, 1912 को जब चाँदनी चौक की सड़क पर लॉर्ड हार्डिंग और लेडी हार्डिंग की सवारी निकल रही थी तब इस गली के सामने उन पर बम फेंका गया था जिसमें वाइसरॉय घायल हुए हुए थे और एक सहायक मारा गया था। इस बम-काण्ड की योजना बनाई थी स्वतन्त्रता-सेनानी रासबिहारी बोस ने। इस सिलसिले में बिना किसी ठोस सबूत के मास्टर अमीरचन्द, अवध बिहारी और बालमुकुन्द को दिल्ली में फाँसी के तख़्ते पर चढ़ा दिया गया था और बसन्त कुमार विश्वास को अम्बाला में।

आओ अब चलते हैं घंटाघर के चौक पर। बाईं ओर नई सड़क है जिसका

निर्माण सन् 1879 में हुआ था। इसको एजर्टन रोड भी कहा जाता था। ये सड़क आगे जाकर चावड़ी बाज़ार में मिल जाती है। शुरू में इस सड़क को अजमेरी गेट तक ले जाने की योजना थी लेकिन घरों को गिराकर सड़क बनाए जाने से लोग काफ़ी असंतुष्ट थे, इसलिए चावड़ी बाज़ार में ही सड़क ख़त्म कर दी गई। इस पर शुरू में कपड़े की ओर आगे जाकर किताबों की दुकानें हैं। घंटाघर चौक के दाईं ओर टाउन हॉल की भव्य इमारत है। 1857 की आज़ादी की लड़ाई के बाद अंग्रेज़ों ने दिल्ली पर कब्ज़ा कर लिया तो शहर चलाने के लिए उन्हें दफ़्तर की ज़रूरत पड़ी। इसी ज़रूरत को पूरा करने के लिए उन्होंने 1866 में टाउन हॉल बनवाया। टाउन हॉल के उत्तर में यानी पीछे एक बाग़ था जिसमें चबूतरे पर एक पत्थर का हाथी था। ये हाथी सचमुच के हाथी जितना बड़ा था। अगर तुम इस हाथी को देखना चाहती हो तो लालक़िले के दिल्ली दरवाज़े पर चलेंगे। ये हाथी अब वहाँ खड़ा है। टाउन हॉल के बाग़ में उस हाथी की जगह अब एक फ़व्वारा है।

टाउन हॉल के सामने सड़क के बीचोंबीच एक घंटाघर हुआ करता था जिसे लॉर्ड नॉर्थ ब्रुक ने 1868 में बनवाया था। बाद में इसका कुछ हिस्सा टूट गया था जिससे कई लोग मरे और ज़ख़्मी हुए। इसलिए इसे ख़तरनाक मानकर गिरा दिया गया। घंटाघर के दाईं ओर महारानी विक्टोरिया की मूर्ति थी। यहीं पर 30 मार्च, 1919 को अंग्रेज़ों ने स्वामी श्रद्धानन्द को गोलियों से छलनी कर दिया। उसी बलिदान की यादगार में महारानी विक्टोरिया की मूर्ति को हटाकर स्वामी श्रद्धानन्द की मूर्ति यहाँ लगा दी गई।

जब चाँदनी चौक बसा तो घंटाघर की जगह पर एक हौज़ हुआ करता था। इस हौज़ में पानी नहर-सआदत-ख़ाँ से आता था। चाँदनी रातों में चाँद की परछाईं हौज़ के पानी में पड़ती थी और सारा माहौल दूधिया रोशनी से नहा उठता था। तभी से शहर का ये हिस्सा चाँदनी चौक कहलाने लगा। बाद में धीरे-धीरे लाल-क़िले से लेकर फ़तेहपुरी तक के सारे इलाक़े का नाम चाँदनी चौक हो गया।

हौज़ के दाएँ और बाएँ बारीक़ नक़्क़ाशी वाले दो बड़े-बड़े दरवाज़े हुआ करते थे। बायाँ दरवाज़ा शहर के गली-कूचों में खुलता था और दायाँ बेगम के बाग़ में। बेगम का बाग़ जहाँआरा उर्फ़ मलका बेगम ने सन् 1650 में बनवाया था। मनकू, तुम अंदाज़ा लगा सकती हो ये बगीचा कितना बड़ा था? पूर्व में लाजपतराय बाज़ार से शुरू होकर पश्चिम में फ़तेहपुरी तक और उत्तर में श्रद्धानन्द मार्ग तक। यानी उस समय फ़तेहपुरी मस्जिद वाली सड़क, रेलवे स्टेशन वाली सड़क और डॉ०

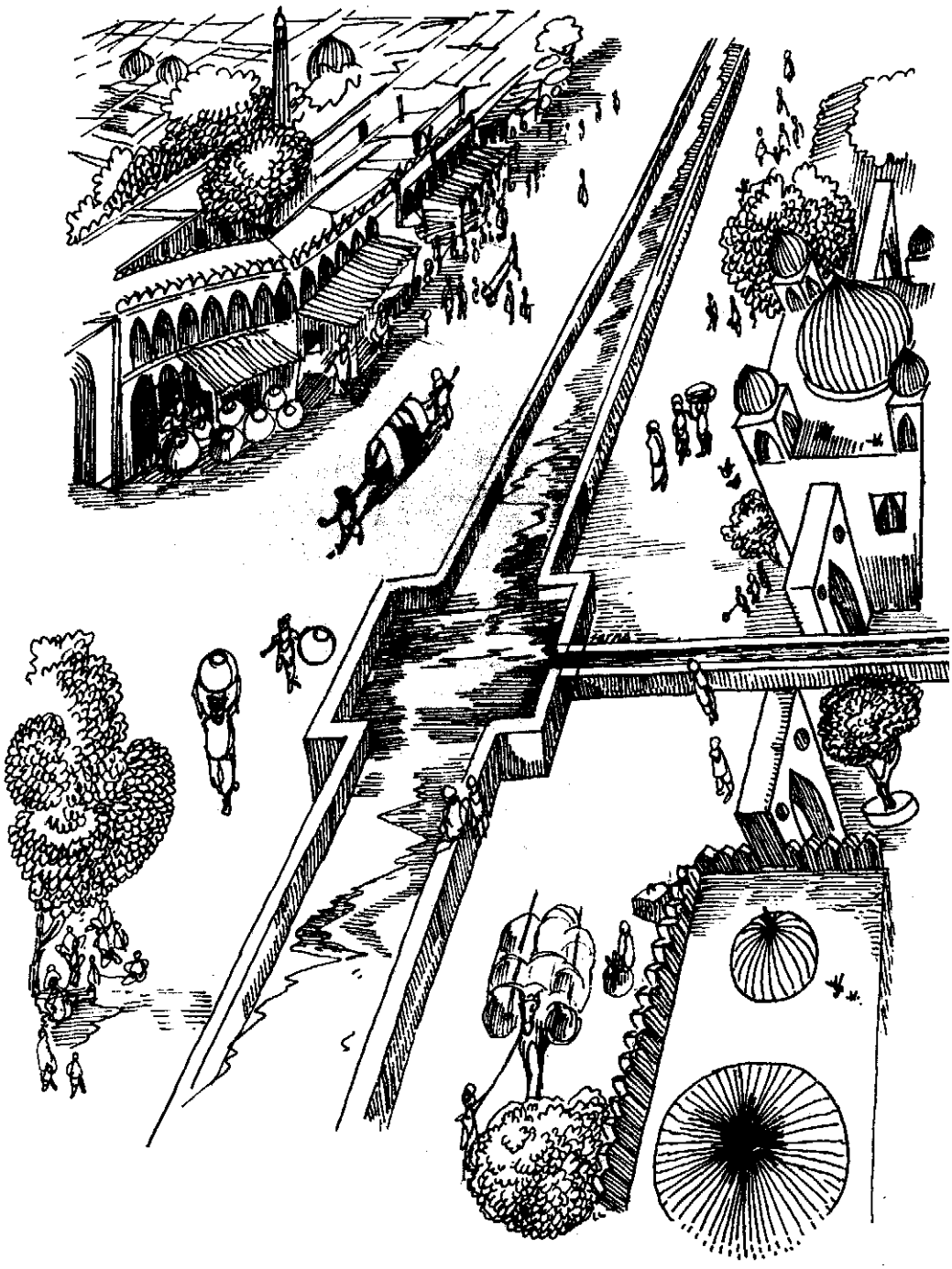

एच० सी० सेन मार्ग पर मलका का बाग़ ही था। तुम अगर फ़व्वारे की सड़क से रेलवे स्टेशन की तरफ़ मुड़ो तो वहाँ सड़क के बीचों-बीच एक कुआँ दिखाई देगा। ये कुआँ बाग़ का हिस्सा हुआ करता था। जहाँआरा का ये बाग़ आकार में ही नहीं, ख़ूबसूरती में भी बेमिसाल था। वहाँ अनेक ताल और नहरें थीं। सुन्दर फ़व्वारे थे, जिनमें चाँदी की टोंटियाँ लगी हुई थीं। बारादरियाँ और झूले थे। बाग़ में जगह-ज़गह आम, जामुन और आँवले के पेड़ थे। नहर-सआदत-ख़ाँ का पानी इस बगीचे को हरा-भरा बनाए रखता था। बाग़ के चारों तरफ़ ऊँची चारदीवारी थी जिसमें बुर्ज बने हुए थे। मलका बेगम और शाही ख़ानदान की दूसरी औरतें बाग़ में आती थीं, झूला झूलती थीं, फल खाती थीं और बारादरी में आराम करती थीं। आए दिन यहाँ त्यौहार-उत्सव मनाए जाते थे। बाग़ के अन्दर ही बेगम की सराय थी। ये सराय वहाँ थी जहाँ आज टाउन हॉल है। सराय में एक बड़ा-सा आँगन था जिसमें दो कुएँ और एक मस्जिद थी। आँगन के चारों तरफ ख़ूबसूरत, नक़्क़ाशी वाले कमरों में दूर-दराज से आने वाले मुसाफ़िर और व्यापारी ठहरा करते थे।

लेकिन समय के साथ धीरे-धीरे इस बाग़ की ख़ूबसूरती और आकार कम होता चला गया। सबसे पहले बेगम समरू को महल बनाने के लिए बाग़ का एक हिस्सा दे दिया गया। नहर-सआदत-ख़ाँ का पानी सूखा तो बग़ीचे पर भी मुर्दनी छाने लगी। 1867 में रेलवे स्टेशन बना तो स्टेशन के सामने सड़क बनाने के लिए बाग़ का हिस्सा ले लिया गया। चाँदनी चौक की सड़क को स्टेशन से जोड़ने के लिए बाग़ के आरपार ही सड़क बना दी गई जिससे बाग़ का एक बड़ा हिस्सा कट गया। उसके बाद तो फिर तेज़ी से बाग़ के पूर्वी हिस्से में लोग बसते चले गए। 1857 की लड़ाई के दौरान बेगम की सराय और बाग़ की चारदीवारी को गिरा दिया गया। सराय की जगह टाउन हॉल बन गया। पश्चिमी और दक्षिणी सिरे पर इमारतें खड़ी होती चली गईं। स्टेशन के सामने दिल्ली पब्लिक लायब्रेरी और क्रिकेट क्लब और उत्तर-पूर्वी सिरे पर हार्डिंग लायब्रेरी बन गई। बाग़ के रूप में कम्पनी बाग़, ज़नाना पार्क और अंगूरों वाला बाग़ बना, लेकिन अब अंगूरों वाले बाग़ में अंगूर नहीं होते। एच० सी० सेन रोड के सामने का हिस्सा गांधी मैदान कहलाने लगा। गांधी-इरविन समझौता होने के बाद 6 मार्च, 1932 को गांधीजी ने इस मैदान में भाषण दिया था। उनके भाषण को सुनने लाखों लोग दूर-दूर से आए थे। दो बरस पहले तक गांधी मैदान में रामलीला जैसे धार्मिक और समाजिक सामारोह होते थे लेकिन अब यह भी कार पार्किंग बनने के कारण उजड़ चुका है। गांधी मैदान के हरे-

भरे पेड़ और घास अब ग़ायब हो चुके हैं।

बेगम के बाग़ की इस कहानी के बाद घंटाघर चौक से आगे चलते हैं। बाईं तरफ़ एक गली जा रही है जिसे बल्लीमारान कहते हैं। ये मल्लाहों का मोहल्ला हुआ करता था। मल्लाह बल्ली (चप्पू) मारकर नाव चलाते हैं, इसलिए गली का नाम बल्लीमारान पड़ गया। उन्नीसवीं सदी में इस गली में नामी हक़ीम, मनसबदार, नवाब और ऐसे सूफ़ी-संत रहा करते थे जिनसे मिलने के लिए बादशाह खुद उनके दरवाजे पर आते थे। मशहूर शायर मिर्ज़ा ग़ालिब भी कई वर्षों तक इसी गली में रहे थे। ग़ालिब साहब इतने बड़े शायर थे कि उर्दू शायरी से अपरिचित लोग भी मिर्ज़ा ग़ालिब का नाम जानते हैं। अफ़सोस है कि ऐसे महान् कवि के घर को हम उसकी यादगार के रूप में संवारकर नहीं रख पाए हैं। ग़ालिब का घर टूट-फूट रहा है। कई सालों तक उसमें कोयले की एक टाल खुली हुई थी। अब उसके एक हिस्से में ईंट, बदरपुर, रेत आदि की दुकान है और दूसरे हिस्से में एक गेस्ट हाउस चल रहा है।

अब हम चलते हैं चाँदनी चौक की यात्रा के आख़िरी पड़ाव पर। ठीक सामने सड़क को बन्द करती हुई फ़तेहपुरी मस्जिद है। इसे सन् 1650 में शाहजहाँ की एक बेगम फ़तेहपुरी बेगम ने बनवाया था। सन् 1857 के स्वतन्त्रता-संग्राम में अंग्रेज़ों ने इस मस्जिद को अपने कब्जे में लेकर लाला छुन्नामल को 40,000 रुपये में बेच दिया। सन् 1877 में जब क्वीन विक्टोरिया को भारत की महारानी बनाया गया तो लाला छुन्नामल के बेटों ने मस्जिद को वापिस लौटा दिया। उसके बदले में उन्हें चार गाँव मिले थे। मस्जिद में घुसने के लिए तीन तरफ़ से रास्ते हैं। मस्जिद के अन्दर एक स्कूल और मदरसा खुला हुआ है।

मनकू, तुमने चाँदनी चौक के अलग-अलग हिस्सों की कहानी सुन ली। अब तुम्हें यह जानने की उत्सुकता हो रही होगी कि पुराने ज़माने में चाँदनी चौक का रहन-सहन, खान-पान आदि कैसा था। लोग अपने मनबहलाव के लिए क्या करते होंगे ? क्या-क्या त्यौहार मनाते होंगे ?

अस्सी-नब्बे बरस पहले तक चाँदनी चौक की ज़िन्दगी हिन्दू और मुस्लिम रहन-सहन का ख़ूबसूरत तालमेल थी। दोनों धर्मों के लोग एक-दूसरे के सुख-दुख, त्यौहारों और मेलों में शामिल होते थे। हिन्दुओं की स्कूली शिक्षा उर्दू से शुरू होती थी। यों तो राजा मुसलमान हुआ करते थे लेकिन राजकाज सम्भालने वालों में हिन्दू भी काफ़ी थे।

उस समय लोग छोटे-छोटे मोहल्ले में एक बड़े परिवार की तरह रहते थे। हर गली के शुरू में काफ़ी ऊँचा और बड़ा दरवाज़ा होता था। रात में दंगे या ऐसे ही किसी संकट के समय दरवाज़े को अन्दर से बन्द कर दिया जाता था। हर मोहल्ले का एक बुज़ुर्ग मुखिया होता था। मोहल्ले के सभी लोग उसकी बात मानते थे और बुज़ुर्ग भी मोहल्ले के हर सदस्य का बहुत ध्यान रखते थे। आज संयुक्त परिवार समाप्त हो गए हैं, दिनचर्या व्यस्त हो गई है। रिश्तेदार भी शादी-ब्याहों में बतौर मेहमान थोड़ी देर के लिए आकर लौट जाते हैं। लेकिन उन दिनों दिल्ली के मोहल्लों में कोई शादी-विवाह होता तो पूरा मोहल्ला काम में हाथ बँटाने में जुट जाता। कोई पूड़ियाँ बेलने में मदद करता तो कोई शामियाने का इंतज़ाम अपने ज़िम्मे ले लेता। अमीर घरों में हफ़्ते-भर तक बारात टिकती और जश्न होता।

उस ज़माने में बिजली नहीं थी इसलिए लोग अपना दिन शुरू भी जल्दी करते थे और ख़त्म भी जल्दी। शाम को दिया जलने का समय होते ही लोग कारोबार बंद करके घर चले जाते थे। तुम्हें मालूम है मनकू कि दिल्ली में बिजली कब आई थी? सन् 1903 में। पानी की पहली पाइप लाइन 1895 में बिछायी गई थी। उससे पहले लगभग हर मोहल्ले में कुआँ हुआ करता था। लोग कुएँ पर तो पानी भरते ही थे, एक-दूसरे का हालचाल भी पूछते-जानते थे। अमीर लोग एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए पालकी का इस्तेमाल करते थे। इन पालकियों को कहार उठाया करते थे। औरतों की पालकी पर पर्दा पड़ा होता था। इक्के का भी रिवाज था। ताँगे 1911 में चलना शुरू हुए। रईस लोग घोड़ा और हाथी भी रखते थे, पर आबादी से दूर। शहर के अन्दर हाथी लाने की इजाज़त नहीं थी। अब तो चाँदनी चौक की सड़क पर ठेले से लेकर बस तक सभी कुछ चलता है लेकिन उस वक़्त छह घोड़ों की गाड़ी लाने के लिए भी इजाज़त लेनी पड़ती थी। पहले की तरह अब भी अगर तेज़ वाहनों को चाँदनी चौक में जाने से रोक दिया जाए तो ट्रैफ़िक जाम बन्द हो जाएँगे और लोग भी आराम से चल-फिर सकेंगे। जानती हो मनकू, कई बार तो लालक़िले से फ़व्वारे तक सवारी पर आने में आधा घंटा लग जाता है। जबकि यही सफ़र पैदल चलकर दस मिनट में तय हो सकता है।

आजकल लोग टी० वी० से मनबहलाव करते हैं। जब टी० वी० नहीं था तो रेडियो सुना करते थे। लेकिन उससे भी पहले जब न बिजली थी न रेडियो तब लोग ख़ाली समय में क्या करते थे? दिल्ली वालों ने तरह-तरह के शौक़ पाले हुए थे। कुछ लोग कबूतरबाज़ी करते तो कुछ बटेर लड़ाया करते थे। किसी को कुश्ती

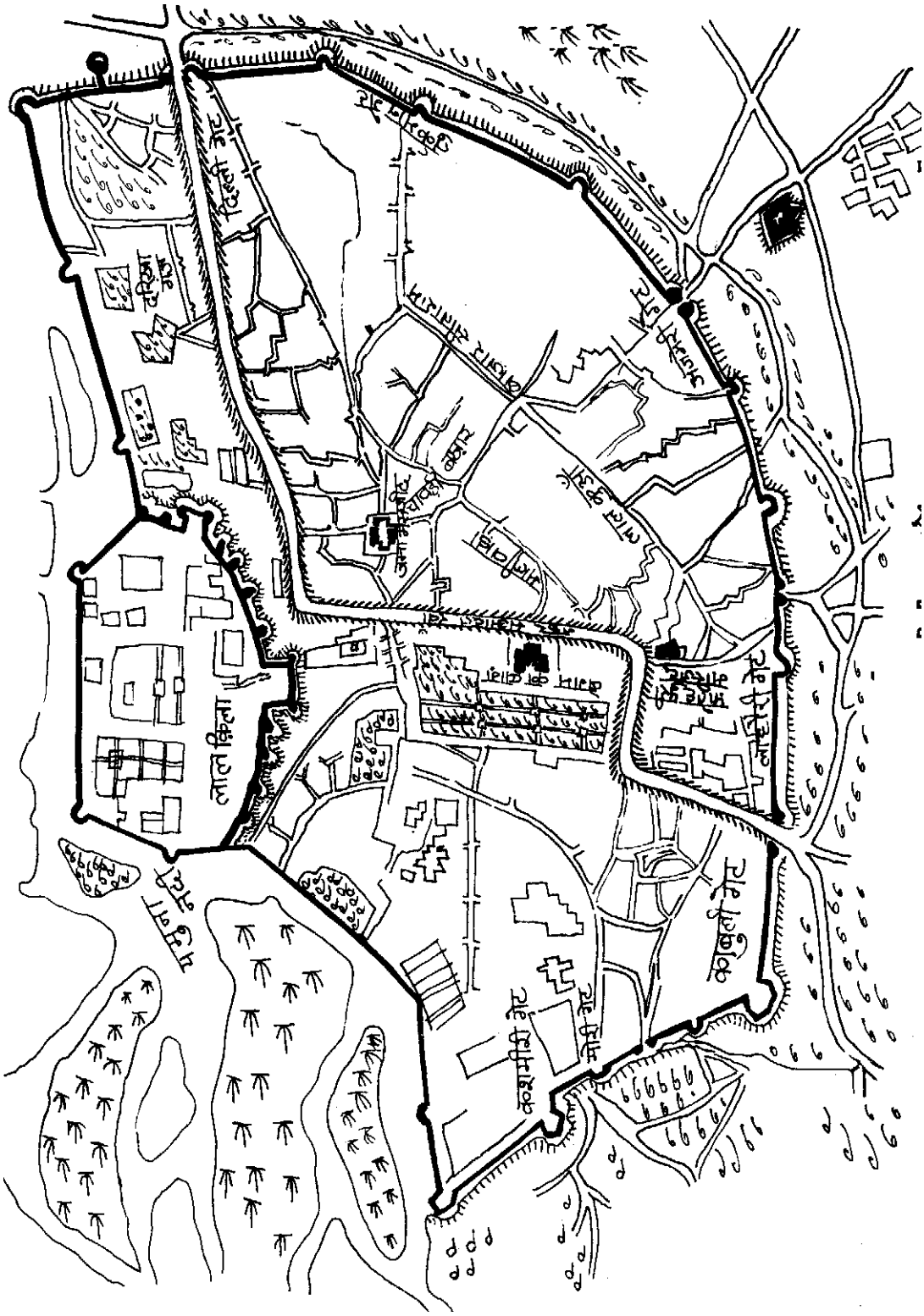

यमुना नदी
लाल क़िला
दरिया गंज
दिल्ली गेट
तुर्कमान गेट
बाज़ार सीताराम
जामा मस्जिद
लाल कुआँ
अजमेरी गेट
कश्मीरी गेट
मोरी गेट
काबुली गेट
लाहौरी गेट

लड़ना या देखना पसन्द था तो कोई यमुना पर तैरने चला जाता था। जिन्हें ये सब नहीं भाता, वे चौपड़ खेलते थे। पतंगबाज़ी छोटे-बड़े सभी को प्रिय थी। आज भी जुलाई-अगस्त के महीने में चाँदनी चौक का आकाश पतंगों से भरा होता है। कभी-कभी रात के समय कंदील वाली पतंगें भी दिखाई देती हैं।

तो यह समझो मनकू कि आज की दिल्ली दो-ढाई सौ साल पहले के शाह-जहानाबाद के मुक़ाबले कितनी भी बदल गई हो, चाँदनी चौक अपना अलग रंग और शान लिए खड़ा है। ये सही है कि दुकानों में चूने की पुताई की जगह वॉलपेपर और एअर कंडीशनर ने ले ली है। लोग चुन्नटदार कुर्ता छोड़कर सफ़ारी सूट पहनने लगे हैं। लेकिन अगर तुम चाँदनी चौक की तुलना बाक़ी दिल्ली से करो तो तुम्हें साफ़ फ़र्क़ नज़र आएगा। भाषा की ही बात लो। जामा मस्जिद के आसपास की करख़नदारी उर्दू और चाँदनी चौक के आसपास की बोली बाक़ी दिल्ली के पंजाबी लहजे से बिल्कुल अलग हैं। चाँदनी चौक में अभी भी डबलरोटी की दुकानें काफ़ी कम हैं; नगौड़ी, पूरी-हलवा और बेड़मी ख़ूब खाई जाती हैं; गर्मियों में सत्तू का ठंडा शर्बत मिल जाता है।

सौ-डेढ़ सौ साल पहले भी चाँदनी चौक दिल्ली की धड़कन था, आज भी है। चाहे राजनीति हो, त्यौहार-उत्सव या व्यापार, चाँदनी चौक इन तीनों से पहले की तरह जुड़ा हुआ है। चाँदनी चौक की सड़कों ने शाहजहाँ के विद्वान् बेटे दारा शिकोह को अपमानित होते देखा; औरंगज़ेब, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के अत्याचारों को देखा। सन् 1857 का ग़दर और उसके बाद की भुखमरी का भी गवाह रहा चाँदनी चौक। आज़ादी की लड़ाई के दौरान जिन लोगों को अंग्रेज़ी फ़ौजें मौत के घाट उतारतीं उनकी शव-यात्रा यहीं से निकाली जाती। जब देश आज़ाद हुआ तो देश के पहले प्रधानमन्त्री पण्डित नेहरू ने लालक़िले से पहला भाषण दिया। सन् 1950 में भारत का संविधान बनने पर भारत के पहले राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद सफ़ेद घोड़ों की बग्घी में बैठकर राष्ट्रपति भवन से लालक़िले आए थे तो चाँदनी चौक दुल्हन की तरह सजा था। आज भी 26 जनवरी का जुलूस इन्हीं सड़कों से होता हुआ लालक़िले पर ख़त्म होता है। पन्द्रह अगस्त पर देश के प्रधानमन्त्री लालक़िले से भाषण करते हैं। इन दोनों मौक़ों पर चाँदनी चौक की सड़क लोगों से खचाखच भर जाती है। चाँदनी चौक के बाहर हम रेडियो-टी० वी० पर स्वतन्त्रता और गणतन्त्र-दिवस समारोह सुनते-देखते हैं। लेकिन अभी भी इन दोनों समारोहों के लिए कितना उत्साह और जोश है, कैसे दूर-दूर से लोग उमड़े

चले आते हैं इसका अन्दाज़ चाँदनी चौक में खड़े होकर ही लग सकता है।

ये तो हुए राष्ट्रीय पर्व। अब बारी है धार्मिक पर्वों की। यों तो सभी प्रमुख त्यौहार शहर के सभी मोहल्लों में मनाए जाते हैं पर कुछ त्यौहार ऐसे हैं जिनमें चाँदनी चौक की छटा कुछ और ही होती है। पूरी दिल्ली में दूसरे मन्दिरों की तुलना में शिवजी के मन्दिरों की संख्या कम है। पर चाँदनी चौक के लगभग हर प्रमुख मोहल्ले में शिवजी का मन्दिर ज़रूर होता है। इसीलिए शिवरात्रि के दिन चाँदनी चौक की गली-गली में शिवालय सजाए जाते हैं, पूजा होती है और भाँग पी जाती है। गौरी शंकर मन्दिर में तो पूरी झाँकी बर्फ़ की बनाई जाती है—बर्फ़ का कैलाश पर्वत, बर्फ़ के शिवजी। मई (जेठ) के महीने में निर्जला एकादशी होती है। व्रत रखने वाले पानी तक नहीं पीते। भक्त लोग मन्दिरों में जाकर मटके, पंखे और ख़रबूज़े दान करते हैं। घर आने वाले लोगों को ख़रबूज़े खिलाते हैं। एक तरह से ये गर्मियों का त्यौहार है। इसे मनाने का उद्देश्य होता होगा ग़रीब लोगों को ये तीनों चीज़ें मुहय्या कराना। जून/जुलाई (आषाढ़) के महीने में जगन्नाथ जी की बहुत बड़ी रथ-यात्रा निकलती है। यह यात्रा एस्प्लेनेड रोड पर जगन्नाथजी के मन्दिर से शुरू होकर चाँदनी चौक की सड़क से गुज़रती है।

जून के बाद कौन-सा महीना आता है मनकू ? जुलाई/अगस्त यानी सावन। सावन में तीज पड़ती है। तीज पर औरतें/लड़कियाँ रंग-बिरंगे कपड़े पहनती हैं, मेंहदी लगाती हैं, झूला झूलती हैं और गीत गाती हैं। अगस्त/सितम्बर (भादों) में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर चाँदनी चौक में ख़ास रौनक़ होती है। सभी मन्दिरों में कृष्णजी की झाँकियाँ सजाई जाती है। इसके बाद बारी आती है नवरात्रि की जिसे तुम रामलीला के दिनों के नाम से जानती हो। इन दिनों लगभग सारा चाँदनी चौक रात में जागता और दिन में सोता है। रामलीला मैदान और परेड ग्राउण्ड की बड़ी रामलीलाओं के साथ-साथ कई मोहल्लों और मैदानों में भी रामलीलाएँ होती हैं। लालक़िले के बाहर के मैदान में एक-दूसरे से सटी तीन रामलीलाएँ होती हैं और दस दिन तक मेला-ठेला लगा रहता है। सारा दिन चाँदनी चौक की सड़कों पर भजन गूँजते रहते हैं। सबसे बड़ी रामलीला होती है आसफ़अली रोड पर रामलीला मैदान में। रोज़ शाम को चार बजे के आसपास इस रामलीला की झाँकी एस्प्लेनेड रोड के श्रीराम मन्दिर से शुरू होती है और रामलीला मैदान पहुँचती है। वहाँ झाँकी में सवार कलाकार रामलीला करते हैं। रात के बारह बजे के आसपास झाँकी वापिस लौटकर श्रीराम मन्दिर पहुँचती है। रात में बत्तियों से जगमगाती झाँकियों

की शान देखते ही बनती है। इस झाँकी को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं। ऐसे में रात के बारह बजे भी चाँदनी चौक की सड़क पर लोगों की उतनी ही भीड़ दिखाई देती है जितनी शाम को चार बजे। तीरकमान वालों, गुब्बारे, चाट और आइस्क्रीम वालों की भी चहल-पहल रहती है। मनकू, तुम अगली रामलीला की झाँकी देखने ज़रूर आना और अपने साथियों को भी लाना। वे सब बहुत ख़ुश होंगे।

इसके बाद अक्टूबर/नवम्बर (कार्तिक) में आती है दीवाली। दीवाली के दिन लक्ष्मी की पूजा की जाती है। चाँदनी चौक व्यापार का गढ़ है। इसीलिए यहाँ के व्यापारियों के लिए दीवाली पर लक्ष्मी-पूजन का विशेष महत्त्व है।

होली का त्यौहार पूरी दिल्ली में होलिका-दहन से हफ़्ता-भर पहले मनाया जाने लगता है। बच्चे रंग भरे गुब्बारों से खेलते हैं। पर चाँदनी चौक में बड़े लोग भी हफ़्ता-भर पहले से एक-दूसरे को सूखा रंग लगाना शुरू कर देते हैं। पहले महा-मूर्ख सम्मेलन का जुलूस निकलता था। होली वाले दिन कम्पनी बाग़ में मेला भी लगता था। अब बहुरूपिये तरह-तरह के स्वांग धरकर घर-घर, दुकान-दुकान जाते हैं और ढोल बजाते हुए बख़्शीश माँगते हैं।

रमज़ान के रोज़ों के बाद ईद-उल्-फ़ित्र की ख़ास रौनक होती है चाँदनी चौक में। सुबह सात बजे नये कपड़े पहने, सफ़ेद टोपियाँ लगाए बच्चों और बड़ों का हुजूम जामा मस्जिद की तरफ़ जाता दिखाई देता है। ठसाठस भरे अहाते के अलावा सीढ़ियाँ, मैदान और आसपास की सड़कें दूर-दूर तक भरी हुई दिखाई देती हैं। नमाज़ के दौरान इमाम साहब की 'अल्लाहो अक़बर' की आवाज़ के साथ-साथ एक लाख लोगों के सिर इकट्ठे झुकते और उठते हैं। सारा माहौल ऐसा होता है कि आदमी मन्त्रमुग्ध-सा देखता रह जाए। इस मौक़े पर अमीर लोग अपनी दौलत का ढाई प्रतिशत ज़रूरतमन्दों को दान देते हैं। घर-घर में सेवईं और पकवान बनते हैं। लोग एक-दूसरे के यहाँ ईद की मुबारक़बाद देने जाते हैं।

गुरु नानकदेव जयन्ती, गुरु तेगबहादुर के शहीदी दिवस और गुरु गोविन्द सिंह के जन्म-दिवस पर सीसगंज गुरुद्वारे में ख़ूब चहल-पहल होती है। गुरु नानकदेव जयन्ती को 'प्रकाश उत्सव' भी कहते हैं। गुरु तेगबहादुर शहीदी दिवस पर सीसगंज से रकाबगंज तक जुलूस निकलता है। इन सभी अवसरों पर सुबह ढाई-तीन बजे से ट्रकों, बसों और टैम्पों में भरकर लोग गाते-बजाते हुए आने लगते हैं। गुरु ग्रन्थ साहिब का पाठ होता है। जोड़ों के मेले के दिन गुरुद्वारे के बाहर हर आने-जाने

वाले को कच्ची लस्सी पिलाई जाती है।

जैन लोगों के यहाँ होली-दीवाली जैसे त्यौहारों के अलावा तीन और प्रमुख पर्व होते हैं। भादों के महीने में अनन्त चौदस दस दिन तक चलता है। ये आत्मशुद्धि का पर्व है। जैनी व्रत रखते हैं। हर मन्दिर में तीर्थंकर की मूर्ति का पानी से अभिषेक होता है। पानी लाने और मूर्ति के अभिषेक के लिए हर मन्दिर में दो लोगों के चुना जाता है। इन्हें इन्द्र कहते हैं। सभी जैन मन्दिरों के इन्द्रों की रथ-यात्रा निकलती है। भादों के महीने में जैनी क्षमावाणी पर्व मनाते हैं। इस दिन मन्दिर में सुबह सभा होती है। लोग जाने-अनजाने में हुई भूलों-ग़लतियों के लिए एक-दूसरे से माफ़ी माँगते हैं। कुछ लोग सभा में सार्वजनिक रूप से भी क्षमा माँगते हैं। किसी व्यक्ति से झगड़ा या मनमुटाव हो तो उसके घर जाकर भी लोग माफ़ी माँग लेते हैं। जैनियों का तीसरा विशेष त्यौहार है अष्टनिका (अठैयाँ)। ये साल में तीन बार मनाया जाता है। इसका समारोह आठ दिन तक चलता है। लोग एक समय खाना खाते हैं। रात को मन्दिर में कीर्तन होता है। आख़िरी दिन रथ-यात्रा निकलती है। भगवान् ऋषभदेव की जयन्ती पर भी रथ-यात्रा निकलती है। इसके अलावा वाल्मीकि जयन्ती, हनुमान जयन्ती, उग्रसेन जयन्ती, आर्यसमाज स्थापना दिवस जैसे मौक़ों पर आए दिन चाँदनी चौक से कोई-न-कोई जुलूस निकलता रहता है। साल में एक बार लालक़िले के मैदान या परेड ग्राउण्ड में सर्कस भी लगता है।

मनकू, अक्सर ये कहा जाता है कि चाँदनी चौक दिल्ली का दिल है। यह बात सच है। और इस दिल में ग़रीब-बेसहारा लोगों के लिए हमदर्दी भी है। शायद यही वजह है कि बेघरबार लोग चाँदनी चौक का एक हिस्सा बन चुके हैं। जितने लोग चाँदनी चौक की पटरियों पर रात गुज़ारते हैं उतने शायद दिल्ली की और किसी कॉलोनी में नहीं। ये बेघर कामगर दो रुपये रोज़ में चारपाई और पाँच रुपये रोज़ में गद्दा किराये पर लेते हैं और सड़क के किनारे सो जाते हैं। जो इतना पैसा भी नहीं जुटा पाते वे पटरी-मैदानों को बिस्तर बना लेते हैं। ग़रीब तबके के नशेड़ियों की पनाहगाह भी यहीं है। पागल और अर्द्ध-विक्षिप्त लोग यहाँ अक्सर घूमते हुए मिल जाएँगे। सीसगंज गुरुद्वारे के सामने रोज़ सुबह एक बूढ़े सरदार जी आते हैं— साफ़-सुथरे कपड़े, पैरों में जूता, एक हाथ में छतरी, दूसरे हाथ में डण्डा, डण्डे के सिरे पर रूमाल और गले से लटकता हुआ टेलीफ़ोन का चोंगा। ये सरदार जी किसी को डाँटते-मारते नहीं। डंडे को माइक की तरह मुँह से लगाकर अनाप-शनाप भाषण देते रहते हैं। इसी तरह एक आदमी कभी-कभी शाम को लालक़िले के चौराहे पर

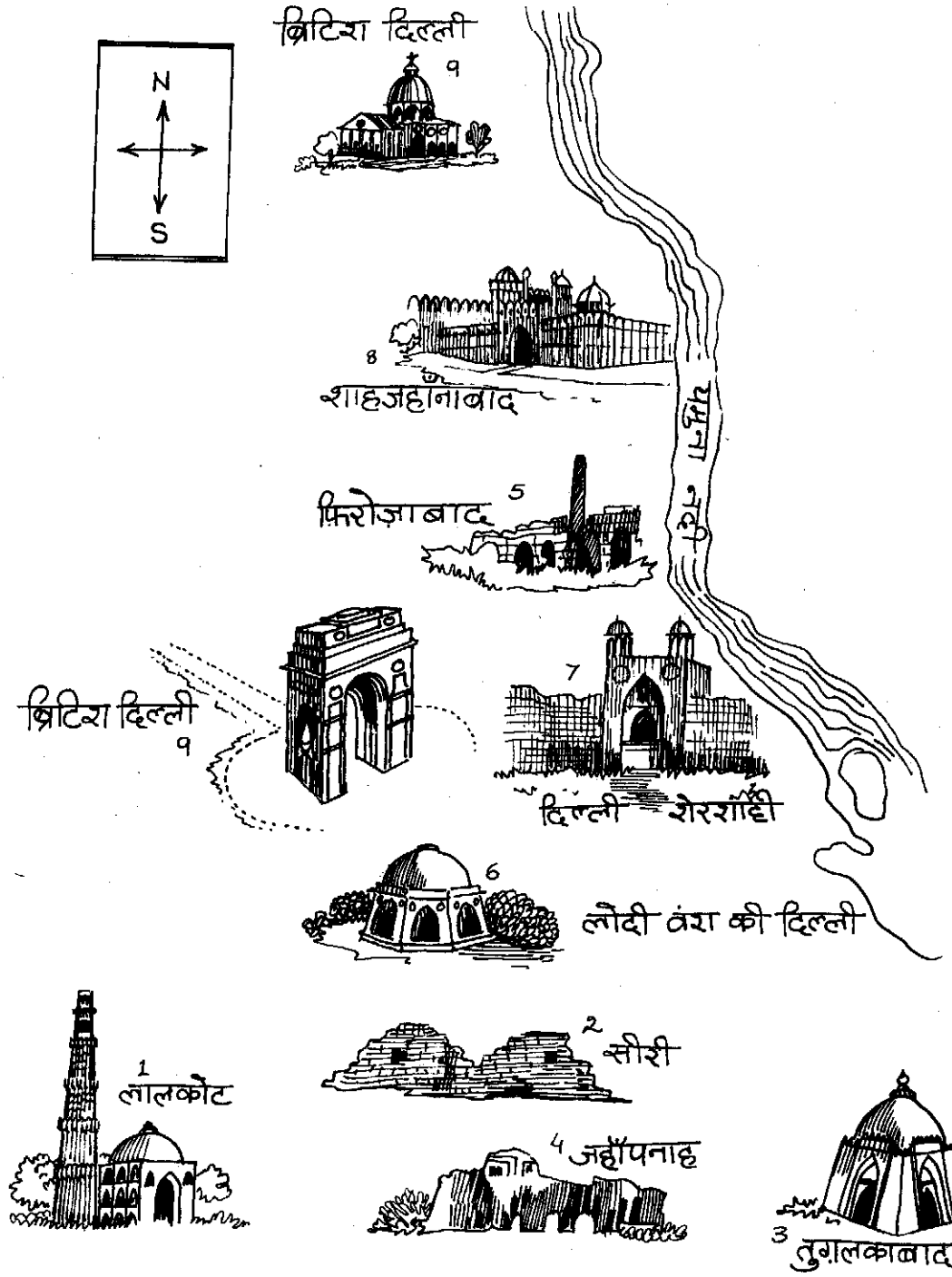
N
S
ब्रिटिश दिल्ली
9
8
शाहजहानाबाद
फ़िरोज़ाबाद
5
ब्रिटिश दिल्ली
9
7
दिल्ली शेरशाही
6
लोदी वंश की दिल्ली
1
लालकोट
2
सीरी
4
जहाँपनाह
3
तुग़लकाबाद

खड़े होकर आते-जाते ट्रैफ़िक को निर्देश देता है। मज़े की बात है कि उसके निर्देश ग़लत नहीं होते। कभी-कभी हैरानी होती है कि यहीं पर इतने पागल क्यों दिखाई देते हैं। शायद इसलिए कि यहाँ ऐसे लोग आसानी से खप जाते हैं। कोई उनका मज़ाक नहीं उड़ाता, न उन्हें दुत्कारता है। कोई चाय पिला देता है, तो कोई खाना खिला देता है। तुम्हें मालूम है मनकू कि चाँदनी चौक में रोज़ लगभग तीन हज़ार लोगों को मुफ़्त खाना खिलाया जाता है। गुरुद्वारे में लंगर होता है। इसके अलावा एस्प्लेनेड रोड, जामा मस्जिद, बल्लीमारान आदि कई जगहों पर शाम के वक़्त खाना बाँटते हुए लोग दिख जाएँगे। जो लोग अपने घरों से खाना लाकर नहीं बाँटना चाहते, वे पटरियों पर भोजन बेचने वालों को दस-बीस-पचास लोगों के खाने का दाम दे देते हैं। खाना बँट जाता है। तुम अपने जन्मदिन पर कुछ ग़रीब लोगों को खाना लिखाना चाहो तो यहीं चली आना।

खाने की बात सुनकर मुझे भूख लग आई। बहुत घूम लिए। फिर किसी दिन दुबारा चाँदनी चौक आएँगे।

आओ अब घर चलें।